



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2021; 7(2): 129-130

© 2021 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 08-01-2021

Accepted: 12-02-2021

डॉ. जया शुक्ला

अतिथि व्याख्याता संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश, भारत।

Corresponding Author:

डॉ. जया शुक्ला

अतिथि व्याख्याता संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश, भारत।

जैन दर्शन में संवरतत्त्व

डॉ. जया शुक्ला

प्रस्तावना

जीवन और जगत् परमसत्ता, चित् और अचित् के विषय में अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं। उनका समाधान अन्तर्दृष्टि से, तर्क से एवं स्वबुद्धि से करना दर्शन है। दर्शन को दिव्यदृष्टि भी कहा जाता है तो कुछ विद्वदजन दर्शन को मानव मस्तिष्क की बौद्धिक उपज भी कहते हैं। आचार्य देवेन्द्र मुनि ने— “दर्शन को मानव का दिव्य चक्षु कहा है। दिव्य दृष्टि से उद्भूत दर्शन ही वास्तिक एवं सही दर्शन है। वही वस्तु स्वरूप की यथार्थता का निदर्शक होता है।”

विश्व के सभी दर्शन भारत एवं यूनान से प्रभावित हैं क्योंकि ये दोनों देश ही दर्शन के अविष्कारक रहे हैं। दर्शन का मुख्य लक्ष्य या ध्येय चेतन और परम चेतन एवं आत्मा व उनका स्वरूप के विषय में सूक्ष्मता से बोध करना रहा है। भारतीय दर्शन में श्रद्धा व तर्क का मधुर समन्वय है, वहीं पश्चिमी दर्शन में बौद्धिक और सैद्धान्तिक दर्शन की प्रमुखता है। मोक्ष चिन्तन ऐसा विषय है जो भारतीय दर्शन को पश्चिमी दर्शन से पृथक करता है। विश्व की व्याख्या करना पाश्चात्य दर्शन का उद्देश्य है, वहीं भारतीय दर्शन शुभ, मोक्ष को प्राप्त करने में सहायक होता है। दर्शन हमें आदर्श लक्ष्य बताता है और धर्म उसको प्राप्त करने का मार्ग। दर्शन को सरल शब्दों में दृष्टि कह सकते हैं और वह साधारण दृष्टि नहीं अपितु वह विषिष्ट दृष्टि जिसकी उत्पत्ति विवेक एवं बुद्धि से हो। जहाँ तक भारतीय दर्शन की बात है तो भारतीय दर्शन असत् से सत् की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर एवं भोग से त्याग की ओर प्रवाहमान रहा है। भारतीय दर्शन का चरम लक्ष्य शाश्वत एवं सम्पूर्ण आनन्द की अन्वेषणा के साथ भौतिक भोगों का पूर्ण त्याग जो कि परम शक्ति के लिए है।

जैन दर्शन में संवर

भारतीय दर्शनों में जैन दर्शन एक प्रमुख एवं प्रभावशाली दर्शन है। इस दर्शन में अपूर्व विशेषताएँ हैं जिनमें जीवन के दुःखों को दूर करना ही उद्देश्य है। जैन दर्शन में तत्त्व के विषय में विस्तृत चर्चा हुई है। जैन दर्शन में जो तत्त्व है वह सत् है और जो सत् है वह द्रव्य है। तत्त्व शैली के अनुसार अर्थात् संक्षेप व विस्तार की दृष्टि से प्रतिपादित दो प्रकार से किया गया है। प्रथम शैली के अनुसार— दो तत्त्व हैं— जीव, अजीव वहीं दूसरी शैली के अनुसार तत्त्व सात हैं— जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा एवं मोक्ष। ये सात तत्त्व जीव एवं अजीव के संयोग एवं वियोग से बने हैं। आस्रव, बन्ध, पुण्य व पाप ये तत्त्व संयोगी हैं वहीं संवर, निर्जरा एवं मोक्ष वियोगी तत्त्व हैं।

संवर जैन दर्शन के अनुसार एक तत्त्व है आस्रव, बन्ध, संवर निर्जरा ये चारों जैन दर्शन के कर्म सिद्धांत के स्तम्भ रूप हैं। संवर का अर्थ कर्म आने के द्वार को रोकना। आत्मा की राग—द्वेष मूलक अशुद्ध प्रवृत्तियों को रोकना ही संवर है। संसार सागर सदृश्य है एवं जीव आत्मा नाव के समान और इसको पार करना है एवं इस नाव में छेद है जिसके कारण कर्म रूपी पानी का आस्रव होता रहता है उसी छेद को समूल बन्द करना ही संवर है।

‘आस्रव निरोध संवर’ संवर आस्रव निरोध की क्रिया है।¹

“सर्वेषामास्रवणां तु निरोधः संवर स्मृतः”²

संवर के द्रव्य संवर एवं भाव संवर दो भेद हैं। इनमें कर्म पुद्गल के ग्रहण का छेदन या निरोध करना द्रव्य संवर है। संसार वृद्धि में कारणभूत क्रियाओं का त्याग करना, आत्मा का शुद्धोपयोग अर्थात् समिति, गुप्ति आदि भाव संवर है।

“स पुनर्भिद्यते द्वेषा द्रव्यभावविभेदतः।

यः कर्म पुद्गलादानच्छेदः स द्रव्यसंवरः।

भवहेतु क्रियात्यागः स पुनर्भावसंवरः।”³

आत्मा को एक सरोवर मानें तो आस्रव रूप कर्म रूपी जल भर रहा है उस सरोवर और वह कर्म रूपी जल साधक अपनी साधना (तप आदि) से उसको समाप्त करने का, रिक्त करने का प्रयत्न करता है किन्तु जब तक कर्म रूपी जल का मार्ग बन्द नहीं किया जाएगा तब तक सरोवर रिक्त नहीं होगा एवं रिक्तता लाने के लिए कर्म रूपी जल के आने का द्वार बंद करना होगा वही संवर कहलाता है। इस उदाहरण से सरलता से संवर का अर्थ समझा जा सकता है।

संवर के भेद

तत्त्वार्थ सूत्र के अनुसार – “स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षा परीषहजयचारित्रैः।”⁴ अर्थात् संवर की सिद्धि, गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषह जय और चरित्र से होती है। क्रम में कुछ अन्तर के साथ नवतत्त्व प्रकरण में संवर की सिद्धि के लिए निदर्शन है— “समिर्दं गुप्ति परिसह जड्धम्मो भावणा चरित्ताणि। पणविदुवीसदसवार पंचमेएहिं सगवन्ना।”⁵

संवर के स्थानांग 5-2-418 में पाँच भेद बताए गए हैं—

1. विपरीत मान्यताओं से मुक्ति प्राप्त करना सम्यकत्व है।
2. अठारह प्रकार के पापों का त्याग करना ही व्रत है।
3. धर्म के प्रति उत्साहित होना अप्रमाद है।
4. कषाय लोभ, मोह, क्रोध आदि का शम होना ही अकषाय है।
5. और मन, वचन काय की क्रियाओं का रूकना ही अयोग है।⁶

इसके अतिरिक्त मन, वचन, शरीर का संयम हिंसा, चोरी, ब्रम्हचर्य, झूठ, परिग्रह से निवृत्ति लेना, पंचइन्द्रियों का निग्रह आदि की दृष्टि से संवर के बीस भेद भी स्थानांग-10-1-709 में बताए गए हैं। संवर के सत्तावन भेद देवेन्द्र सूरि ने किए हैं— ‘तत्थ परीसह समिर्दं गुप्ती भावण चरित्तं धम्महिं बाबीसपणतिवारसपण दसमेएहि जहसंखं।’⁷

पाँच समिति, तीन गुप्ति, दस धर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाईस परीषह जय, पाँच चरित्र इस तरह सत्तावन भेद हैं वहीं द्वादशानुप्रेक्षा के अनुसार संवर के चार भेद बताए गए हैं— “सम्मत्तं, देसवयं महत्त्वयं तह जओ कसायाणं एदे संवरमाणा, जोगाभावो तहच्चेव।”⁸

सम्यकत्व, देशव्रत महाव्रत विरति, कषाय एवं योगाभाव संवर ये चार संवर भेद हैं। समसार मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति और योग इन चारों को संवर मानता है।⁹

आत्म-प्रदेश की स्थिरता को संवर एवं चंचलता को आस्रव कहते हैं। तत्त्वार्थ सर्वार्थसिद्धि संवर व आस्रव के विषय में कहता है कि— “अभिनवक मादान हेतु रास्रवो तस्य निरोधः संवर इत्युच्यते।”¹⁰ अर्थात् आस्रव से नए-नए कर्म प्रविष्ट होते रहते हैं और संवर से नए कर्मों का प्रवेश रूक जाता है। इसलिए ‘मोक्षस्य प्रधान हेतुः संवरो निर्जरा च।’¹¹

मोक्ष का प्रधान हेतु संवर एवं निर्जरा है कहा गया है। जैन सिद्धांत के सात तत्त्वों में चार कर्म सिद्धांत में संवर अत्यन्त महात्वपूर्ण है। कर्मशय करने का पहला कदम है। संवर के पश्चात् ही निर्जरा होती है।

संवर विधि— जहाँ तक संवर विधि की बात करते हैं तो समयसार में लिखा है कि आत्मा को आत्मा के द्वारा जो पुण्यपापरूपी शुभाशुभ योगों से रोककर दर्शनज्ञान में स्थित होता हुआ और अन्य वस्तु की इच्छा से विरत होता हुआ, जो आत्मा सर्वसंग से रहित होता हुआ, अपने आत्मा को आत्मा के द्वारा ध्याता है और कर्म तथा नोकर्म को नहीं ध्याता एवं चेतयिता (होने से) एकत्व को ही

चिंतवन (चिंतन) करता है, अनुभव करता है। वह आत्मा आत्मा को ध्याता हुआ दर्शनज्ञानमय और अनन्यमय होता हुआ अल्पकाल में ही कर्मों से रहित आत्मा को प्राप्त करता है।”¹²

संवर को सामान्य अर्थ में हम कहें तो आने के मार्ग को रोकना। जिस प्रकार किसी एक द्वार पर भारी भीड़ घुस रही हो उसको रोका जाए वही संवर है। इसी तरह मोक्षमार्ग है। निरन्तर मोह, माय, राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि के माध्यम कर्म भरे हैं और भरते ही जा रहे हैं, अविरल प्रवाहमान हैं, उनको अपनी आत्मशक्ति से, अपने पुरुषार्थ से ही उन कर्म के प्रवाह को रोकना ही संवर है। वास्तव में संवर का एक अर्थ लड़ना है और यह लड़ाई आत्मा में निरन्तर चले आ रहे कर्मों से है, उन्हें रोकने में है। संवर तत्त्व अपेक्षित है मोक्षमार्ग पर चलने वालों के लिए। संवर एवं विर्जरा दोनों ही आत्मपुरुषार्थी हैं। संवर तो आत्मा का श्रृंगार है। संयम, तप, त्याग अपनाते ही संवर जाग्रत हो जाता है और आने वाले कर्म रूक जाते हैं।

इस तरह मोक्ष का अनन्य कारण संवर है। इस संवर के लिए गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषह जय और चरित्र साधकतम कारण है और इनकी प्राप्ति त्याग से होगी। जैन अर्थात् जो जिन के अनुयायी हों और जिन का आशय है मन जीतने वाला। जिन्होंने तन, मन, वाणी पर अधिकार प्राप्त कर लिया और विशिष्ट ज्ञान पाकर पूर्ण ज्ञान पाकर जिनेन्द्र बने। उन जिनेन्द्र आप्त पुरुषों ने संवर को महत्वपूर्ण माना और कर्म बन्ध को रोका तत्पश्चात् निर्जरा जो कि कर्मों को क्षय करना है उसको अपनी तपश्चर्या से प्राप्त कर अन्त में मोक्ष, जीवन व मरण के चक्र से मुक्ति प्राप्त किया यही जैन दर्शन का मुख्य ध्येय है।

संदर्भ

1. तत्त्वार्थ सूत्र-9/1
2. योगशास्त्र 79, पृष्ठ-4
3. योगशास्त्र 79-80
4. तत्त्वार्थ सूत्र 9/2
5. नवतत्त्वप्रकरण-25
6. स्थानांग 5-2-418
7. नवतत्त्व प्रकरण - 42
8. द्वादशानुप्रेक्षा में संवरानुप्रेक्षा-95
9. समयसार 190-191
10. तत्त्वार्थ सर्वार्थसिद्धि 9/1
11. तत्त्वार्थ सवार्थसिद्धि 1/4
12. समयसार-आत्मख्याति 187-189